

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 8: ब्रह्मा का प्राकट्य

13 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



शयनरत भगवान् की नाभि से, प्रलयकालीन अनन्त जल के ऊपर, एक कमल प्रस्फुटित होता है — और उसके भीतर विराजमान, एक साथ चारों दिशाओं में दृष्टि डालते हुए, स्वयंभू ब्रह्मा उस सृष्टि पर नेत्र खोलते हैं जिसे वे अभी देख नहीं पाते।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। विदुर की दीर्घ तीर्थयात्रा — जो निर्वासन में आरम्भ हुई, यदुवंश के विनाश के शोक से होकर गुज़री, तथा एक-एक कदम उस महर्षि की ओर मार्गदर्शित हुई जो अन्ततः उनके प्रश्नों का उत्तर दे सकते थे — इस अध्याय में अपने गन्तव्य तक पहुँचती है। गंगा के तट पर महर्षि मैत्रेय को पाकर, विदुर

अब वही शिक्षा प्राप्त करते हैं जो भगवान् संकर्षण ने सर्वप्रथम बालऋषि सनत्कुमार को दी थी, और जो गुरु से शिष्य तक होते हुए अन्ततः महर्षि मैत्रेय तक पहुँची। अध्याय 8 वह स्थान है जहाँ से यह शिक्षा वास्तव में आरम्भ होती है — किसी अमूर्त दर्शन से नहीं, अपितु सृष्टि की प्रथम घटना से: शयनरत परमेश्वर की नाभि से एक ब्रह्माण्डीय कमल का प्राकट्य, तथा उस कमल से, आने वाले लोकों के स्वयंभू शिल्पी ब्रह्मा का जन्म। ब्रह्मा ऐसी किसी वस्तु पर नेत्र खोलते हैं जिसे वे पहचान नहीं पाते, अपने ही अस्तित्व के मूल की खोज में असफल रहते हैं, और अन्ततः, सौ वर्षों की अटूट समाधि के पश्चात्, अपने हृदय में उसी भगवान् का तेजोमय स्वरूप देखते हैं जिसकी वे खोज कर रहे थे।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 8 (अष्टम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: ब्रह्मा का प्राकट्य
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय (विदुर को अपनी शिक्षा आरम्भ करते हुए), जो आगे सनत्कुमार द्वारा भगवान् संकर्षण से पूर्व में किए गए प्रश्न का वर्णन करते हैं — यह सम्पूर्ण कथा सूत गोस्वामी द्वारा ऋषि शौनक तथा नैमिषारण्य की सभा को सुनाई जाती है
- मुख्य श्रोता: विदुर (सीधे महर्षि मैत्रेय की शिक्षा प्राप्त करते हुए); ऋषि शौनक एवं नैमिषारण्य का ऋषि-समुदाय (सूतजी से सुनते हुए)
- मुख्य स्थान: गंगा नदी का तट, जहाँ मैत्रेय और विदुर विराजमान हैं; मैत्रेय के वर्णन के भीतर, पाताल का भूगर्भ प्रदेश (जहाँ संकर्षण निवास करते हैं) तथा वह अनन्त प्रलय-जल जिस पर भगवान् नारायण शयन करते हैं
- मुख्य विषय-वस्तु: विदुर की प्रशंसा तथा उस गुरु-परम्परा का वर्णन जिससे भागवत-शिक्षा मैत्रेय तक पहुँची; भगवान् नारायण की ब्रह्माण्डीय निद्रा; नाभि-कमल का प्राकट्य तथा स्वयंभू ब्रह्मा का जन्म; कमल के मूल की खोज में ब्रह्मा की असफलता; तथा शेषशायी भगवान् के दर्शन में परिणत होने वाली ब्रह्मा की सौ वर्षों की तपस्या
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 8, श्लोक 1–33
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

मैत्रेय का आरम्भ: विदुर की प्रशंसा तथा गुरु-परम्परा

मैत्रेय ब्रह्माण्ड-विज्ञान से नहीं, अपितु स्नेह से आरम्भ करते हैं। वे विदुर से कहते हैं कि सम्पूर्ण पुरुवंश केवल इसलिए आदरणीय बन गया है क्योंकि विदुर उसमें जन्मे — और, एक विशिष्ट उल्लेख में, विदुर को साक्षात् यम देव के रूप में पहचानते हैं, इतने अधिक भगवद्भक्त हैं वे, तथा वे अपने ही प्रश्नों के माध्यम से सदैव “श्रीहरि की महिमा की माला को... प्रति क्षण नवीन सौन्दर्य” प्रदान करते हैं। यह एक प्रवचन आरम्भ करने का सुन्दर ढंग है — अधिकार जताकर नहीं, अपितु शिक्षा प्राप्त करने आए व्यक्ति की निष्ठा का सम्मान करके।

मैत्रेय उवाच

सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो

यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ।

बभूविथेहाजितकीर्तिमालां

पदे पदे नूतनयस्यभीक्षणम् ॥ १ ॥

*maitreya uvāca sat-sevanīyo bata pūru-vaṁśo yal loka-pālo bhagavat-pradhānaḥ
babhūvithehājita-kīrti-mālāṁ pade pade nūtanayasy abhikṣaṇam*

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: हे विदुर! पुरुवंश उस दिन से सज्जनों द्वारा भी आराधना योग्य हो गया है जब से आप उसमें जन्मे — आप, जो साक्षात् यम देव से अन्यथा नहीं, इतने भगवद्भक्त; और आप अपने प्रश्नों से प्रति क्षण श्रीहरि की महिमा की माला को नवीन सौन्दर्य प्रदान करते हैं। (स्कन्ध 3, अध्याय 8, श्लोक 1)

तत्पश्चात् मैत्रेय बताते हैं कि वे आगे क्या शिक्षा देने वाले हैं, और क्यों: “क्षुद्र इन्द्रिय-सुखों की खोज में पड़े मनुष्यों के महान् दुःख को दूर करने के लिए,” वे अब भागवत-पुराण का वर्णन करेंगे — वही शिक्षा जो स्वयं भगवान् संकर्षण ने बालऋषि सनक तथा उनके भाइयों को दी थी। वे स्मरण कराते हैं कि किस प्रकार सनत्कुमार तथा अन्य ऋषिगण, संकर्षण से भी उच्चतर भगवान् के सत्य को जानने के लिए उत्सुक होकर, एक बार पाताल के भूगर्भ प्रदेश में संकर्षण के पास पहुँचे थे, जहाँ वे अपने ही स्रोत, भगवान् वासुदेव, की मानसिक आराधना में लीन थे, अपने कमलकली-सम नेत्रों को अपने अतिथियों के प्रति स्नेहवश आधा खोले हुए। ऋषियों ने अपनी गंगाजल-सिक्त जटाओं से उन चरण-कमलों को स्पर्श किया जिनकी आराधना नागकन्याएँ भी योग्य वर के लिए करती थीं, तथा भक्ति-गद्गद स्वर में संकर्षण की महिमा का गान किया, जबकि उनके सहस्र नाग-फणों के मुकुटों में जड़े रत्न प्रकाशित हो रहे थे।



पाताल के भूगर्भ प्रदेश में, सनत्कुमार तथा अन्य बालऋषि भगवान् संकर्षण के पास पहुँचते हैं, जिनके सहस्र नाग-फण रत्नों से मण्डित हैं, अपने से भी उच्चतर भगवान् के सत्य को जानने के लिए (श्लोक 3-6)।

तत्पश्चात् मैत्रेय उस परम्परा का वर्णन करते हैं जिसके माध्यम से यह शिक्षा उन तक पहुँची: संकर्षण ने वैराग्य-निष्ठ सनत्कुमार को यह शिक्षा दी; सनत्कुमार ने ब्रह्मचर्य-व्रती ऋषि सांख्यायन को दी; सांख्यायन ने, भगवान् की महिमा का वर्णन करने के लिए उत्सुक होकर, अपने ही शिष्य तथा मैत्रेय के गुरु, पराशर को, और साथ ही ऋषि बृहस्पति को भी यह शिक्षा दी; और पराशर ने, अपने पिता पुलस्त्य द्वारा प्रेरित होकर, यह महान् पुराण स्वयं मैत्रेय को सिखाया। “और अब मैं वही शिक्षा तुम्हें देता हूँ,” मैत्रेय विदुर से कहते हैं, “हे प्रिय बालक, जो इतने श्रद्धावान् तथा सदैव मुझमें भक्तिनिष्ठ हो।” इन नौ आरम्भिक श्लोकों में, गुरु से शिष्य तक, हृदय से हृदय तक चली आ रही एक अखण्ड परम्परा अन्ततः विदुर से बात करने के इस क्षण तक, और उनके माध्यम से, इस शिक्षा को ग्रहण करने वाले प्रत्येक पाठक तक, पहुँचती है।

भगवान् नारायण की ब्रह्माण्डीय निद्रा

श्लोक 10 से मैत्रेय वास्तविक कथा आरम्भ करते हैं — और यह प्रकाश से नहीं, अपितु विशाल, मौन प्रतीक्षा के एक चित्र से आरम्भ होती है। सृष्टि से पूर्व, वे कहते हैं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जल में निमग्न था, और उस समय केवल एक ही सत्ता विद्यमान थी — स्वयं भगवान् नारायण, जो अपने शेषनाग-शय्या पर विराजमान थे। उनके नेत्र निद्रा में मुँदे-से प्रतीत होते थे, किन्तु उस विश्राम में भी उनकी चेतना पूर्णतः जाग्रत थी — यह एक योगनिद्रा थी, साधारण निद्रा नहीं — तथा वे सृष्टि, पालन और संहार की त्रिविध क्रिया से पूर्णतः विरत होकर अपने ही आत्मस्वरूप के आनन्द में लीन थे।

अपने ही शरीर में, मैत्रेय बताते हैं, भगवान् ने समस्त जीवों के सूक्ष्म शरीरों को समेट रखा था, उन्हें वहाँ उसी प्रकार सँजोए हुए जैसे अग्नि काष्ठ में सुप्त तथा अप्रकट रहती है — विद्यमान, फिर भी अव्यक्त — जबकि केवल उनकी काल-शक्ति ही सक्रिय बनी रही, सृष्टि के पुनः आने के समय उन्हें जगाने की प्रतीक्षा में। चार युगों के सहस्र चक्रों के तुल्य अवधि तक भगवान् इस प्रकार जल पर शयन करते रहे, उनकी अपनी चेतना ही उनका एकमात्र साथी थी, यहाँ तक कि काल ने ही, समस्त जीवों के संचित कर्मों के अनुसार कार्य करते हुए, उन्हें एक क्षण में दिखा दिया कि असंख्य लोक अभी भी उनके ही स्वरूप में विलीन हैं, अव्यक्त।



सृष्टि से पूर्व, भगवान् नारायण अकेले विद्यमान हैं, अनन्त प्रलय-जल पर शेषनाग-शय्या पर योगनिद्रा में लीन, विश्राम में भी सदैव जाग्रत चेतना सहित (श्लोक 10-12)।

नाभि-कमल का प्राकट्य तथा ब्रह्मा का जन्म

यह उसी क्षण होता है — जब भगवान् की दृष्टि उस सूक्ष्म तत्त्व पर पड़ती है जो उनके ही शरीर में सन्निहित था, अब रजोगुण, काल द्वारा प्रेरित क्रियाशीलता के सिद्धान्त, से क्षुब्ध होकर — कि महान् प्रकटीकरण आरम्भ होता है। वह सूक्ष्म तत्त्व आने वाले ब्रह्माण्ड के स्थूल रूपों को विकसित करने हेतु उनकी नाभि से निकलता है, और, समस्त कर्मों के अवशेष पर काल की शक्ति से प्रेरित होकर, वह सहसा एक कमल-कली के रूप में स्फुटित होता है — एक ऐसी कली जिसकी शोभा उस विशाल जल-विस्तार को द्वितीय सूर्य के समान आलोकित कर देती है।

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः

प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ।

तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता

स्वयम्भुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥ १५ ॥

tal loka-padmaṁ sa u eva viṣṇuḥ prāvīviśat sarva-guṇāvabhāsam tasmin svayaṁ vedamayo vidhātā svayambhuvaṁ yaṁ sma vadanti so 'bhūt

अर्थ: सर्वव्यापी भगवान् विष्णु स्वयं उस कमल में, जो समस्त लोकों का प्रतिनिधित्व करता था, अन्तर्यामी रूप में प्रविष्ट हुए। उससे सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा) प्रकट हुए, जो वेद के साक्षात् स्वरूप हैं और जिन्हें “स्वयम्भू” कहा जाता है, क्योंकि उनका कोई दृश्य जनक नहीं था। (स्कन्ध 3, अध्याय 8, श्लोक 15)

स्वयं भगवान् विष्णु, मैत्रेय विदुर को बताते हैं, उस नाभि-कमल में अन्तर्यामी के रूप में प्रविष्ट हुए — वह कमल जो बीज-रूप में समस्त चौदह लोकों तथा भावी इन्द्रिय-भोग की समस्त वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करता था। और उसी में से सृष्टिकर्ता प्रकट हुए: ब्रह्मा, जो साक्षात् वेद-स्वरूप हैं, “स्वयम्भू” इसलिए कहलाते हैं क्योंकि उनके जन्म का कारण बनने वाला कोई दृश्य जनक नहीं था। किन्तु ब्रह्मा, उस विशाल कमल के कर्णिका पर विराजमान होकर, कोई भी लोक नहीं देख पाए। अपनी गर्दन को हर दिशा में घुमाकर विस्तृत नेत्रों से शून्य आकाश को खोजते हुए, वे उसी क्षण चार मुखों से युक्त हो गए — एक-एक मुख प्रत्येक दिशा की ओर — जिससे वे एक साथ चारों ओर देख सकें। और फिर भी, प्रलयकालीन प्रचण्ड वायु से उद्वेलित उस कमल पर स्थित होकर, आदिदेव ब्रह्मा न तो उस कमल की वास्तविकता समझ पाए जो उनका आधार था, न ही अपने स्वयं के अस्तित्व की।



भगवान् विष्णु के नाभि-कमल से स्वयम्भू ब्रह्मा प्रकट होते हैं — कर्णिका पर विराजमान, विस्मित नेत्रों से हर दिशा में घूमते हुए, सहसा चार मुखों से युक्त, फिर भी किसी भी लोक अथवा अपने स्वयं को न पहचानते हुए (श्लोक 13-17)।

ब्रह्मा की मूल-खोज, तथा सौ वर्षों की समाधि

व्याकुल होकर, ब्रह्मा स्वयं से तर्क करते हैं: “मैं इस कमल के कर्णिका पर विराजमान हूँ — किन्तु यह कमल कहाँ से उत्पन्न हुआ है? निश्चय ही यह शून्य में अकेला (बिना किसी आधार के) खड़ा नहीं रह सकता। अतः यह उचित प्रतीत होता है कि यह कमल जल के भीतर किसी वस्तु से उत्पन्न हुआ होगा, जिस पर यह डण्ठल टिका हुआ है।” इस छिपे हुए आधार को खोजने का निश्चय करके, वे उस कमल-डण्ठल के छिद्रों से होकर जल में गोता लगाते हैं, डण्ठल के अनुदिश नीचे उसकी जड़ की खोज में उतरते हुए। किन्तु जितना भी वे प्रयास करें, जितना भी निकट पहुँचें प्रतीत हो, अजन्मा ब्रह्मा डण्ठल के मूल तक नहीं पहुँच पाते। उस अभेद्य अन्धकार में अपने ही उद्गम को टटोलते हुए, उन्हें यह भान भी नहीं रहता कि कितना समय बीत चुका है — क्योंकि वहाँ बीतने वाला समय, मैत्रेय कहते हैं, भगवान् के स्वयं के सुदर्शन चक्र से अन्यथा नहीं, जो मौन रहकर, हर प्राणी के जीवन की निर्धारित अवधि को घुमते हुए ही काटता रहता है।

अन्ततः, अपने अभीष्ट को प्राप्त किए बिना, ब्रह्मा खोज त्याग देते हैं और अपने कमल-आसन पर लौट आते हैं। वहाँ वे कुछ सर्वथा भिन्न करते हैं: वे अपने प्राण को स्थिर करते हैं, अपने मन को समस्त बाह्य विषयों से पूर्णतः हटा लेते हैं, तथा अखण्ड समाधि में — भगवान् पर पूर्णतः केन्द्रित गहन ध्यान में — बैठ जाते हैं। वे इस प्रकार, पूर्ण स्थिरता में, सौ पूर्ण वर्षों तक — एक स्वस्थ मानव-जीवन की सम्पूर्ण अवधि — बने रहते हैं, जब तक कि उस अपार साधना के अन्त में ज्ञान का प्रकाश उनके भीतर स्वयं ही उदित नहीं हो जाता, और वे अपने ही हृदय में सहज रूप से वह देख लेते हैं जिसे उनकी उन्मत्त खोज कभी नहीं दिखा सकी थी।

इस असफलता तथा इस सफलता के पीछे एक गहरी शिक्षा छिपी है। ब्रह्मा कमल के मूल को न पा सकने के कारण शक्ति अथवा दृढ़ता से रहित नहीं हैं — वे तो स्वयं वही देव हैं जो आगे चलकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना करेंगे। वे इसलिए असफल होते हैं क्योंकि भगवान् को कोई भी अपने निजी प्रयास से नहीं पा सकता — चाहे वह प्रलय-जल में भटकते शरीर का श्रम हो अथवा चिन्तन में लगे मन का श्रम। जब ब्रह्मा अपना समस्त प्रयास त्यागकर अपने मन को पूर्ण समर्पण में अर्पित कर देते हैं, तभी वह दर्शन जिसकी उन्होंने खोज की थी उन्हें प्राप्त होता है — उनके परिश्रम से छीना हुआ नहीं, अपितु भगवान् की कृपा से ही प्रदत्त (श्लोक 19, 21-22)। यही प्रत्येक जीव की भगवत्-खोज की व्यवस्था है: उपलब्धि नहीं, अपितु समर्पण ही उस कृपा को आमन्त्रित करता है जो अकेले उन्हें प्रकट करती है।



प्रलय-जल में गहरे उतरने के बाद भी कमल-डण्ठल का मूल न पा सकने पर, ब्रह्मा खोज त्याग देते हैं, अपने मन को स्थिर करते हैं, तथा सौ वर्षों तक अखण्ड ध्यान में बैठे रहते हैं, जब तक कि उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश उदित नहीं हो जाता (श्लोक 18-22)।

शेषशायी भगवान् के दर्शन

जब ज्ञान अन्ततः उदित होता है, ब्रह्मा जो देखते हैं उसका वर्णन भागवत के इस भाग के कुछ सर्वाधिक भव्य तथा प्रेममय श्लोकों में हुआ है। उन जल पर, जिन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को निमग्न कर लिया था, ब्रह्मा उस एकमात्र परम पुरुष — भगवान् नारायण — को देखते हैं, जो शेषनाग के विशाल शरीर पर, जो कमल-तन्तु के समान श्वेत था तथा उनके लिए शय्या का कार्य करता था, विराजमान थे। नागराज के दस सहस्र फण भगवान् के ऊपर इतने ही छत्रों के समान फैले हुए थे, तथा उनके असंख्य मुकुटों में जड़े रत्न अपने ही तेज से चारों ओर के अन्धकार को दूर कर रहे थे।

मृणालगौरायतशेषभोग-

पर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ।

फणातपत्रायुतमूर्धरत्न-

द्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥ २३ ॥

*mṛṇāla-gaurāyata-śeṣa-bhoga- paryāṅka ekaṁ puruṣaṁ śayānam phaṇātapatrāyuta-mūrdha-
ratna- dyubhir hata-dhvānta-yugānta-toye*

अर्थ: प्रलयकाल में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को निमग्न कर चुके उन जल पर, ब्रह्मा ने उस एकमात्र परम पुरुष को शेषनाग के विशाल, कमल-तन्तु-सम श्वेत शरीर पर शयन करते देखा, जो उनके लिए शय्या का कार्य कर रहा था — नागराज के फणों की छत्र-सम छाया के नीचे, जिनके मुकुट-मणियों की आभा ने वहाँ की सारी कालिमा हर ली थी। (स्कन्ध 3, अध्याय 8, श्लोक 23)

मैत्रेय इस दर्शन पर विस्तार से रुकते हैं, इसकी शोभा को व्यक्त करने के लिए एक के बाद एक उपमा प्रस्तुत करते हुए। भगवान् का श्याम, तेजोमय स्वरूप एक मरकत-पर्वत की शोभा को मात देता है; उनका पीत रेशमी वस्त्र ऐसे पर्वत के पार्श्वों में लटकती उज्ज्वल सान्ध्य मेघमालाओं को म्लान कर देता है; उनका रत्नजड़ित मुकुट उसके स्वर्णिम शिखरों की शोभा को पार कर जाता है; उनकी वन-पुष्पों की माला उसके वक्षस्थल पर सुशोभित रत्नों, झरनों तथा पुष्पित लताओं की शोभा को भी फीका कर देती है; उनकी सुगठित भुजाएँ उस पर्वत की भुजा-सम वंश-वाटिकाओं को पीछे छोड़ देती हैं; उनके सुन्दर चरण उसकी मूल-सम वृक्षावलियों को भी लज्जित कर देते हैं। तीनों लोकों को समाहित करने वाला उनका स्वरूप लम्बाई तथा चौड़ाई दोनों में अद्वितीय है — इतना विशाल कि उनके अपने ही दिव्य आभूषण, चाहे कितने भी अद्भुत हों, उनसे शोभा प्रदान करने के बजाय स्वयं उनसे ही शोभा उधार लेते प्रतीत होते हैं। वे अपने चरण-कमलों को, जो समस्त इच्छाओं को पूर्ण करते हैं, उन भक्तों के समक्ष खुले रूप में दर्शाते हैं जो निर्दोष विधियों से उनकी आराधना करते हैं — चरण जिनकी अंगुलियों की पंखुड़ियाँ चन्द्र-सम नखों की किरणों से स्पष्ट दिखाई देती हैं; तथा वे कोमल भौंहों तथा सम्पूर्ण जगत् की पीड़ा हरने वाली मुस्कान से युक्त अपने मुखमण्डल से समस्त दर्शकों का स्वागत करते हैं, उनके कर्ण चमकते कुण्डलों से सुशोभित हैं, उनके अधर पके बिम्ब-फल के समान लाल हैं। उनके विशाल वक्षस्थल पर एक स्वर्णिम रेखा तथा उनका अमूल्य, सर्वप्रिय हार, तथा कौस्तुभ मणि, जो किसी पर्वत के हृदय से निकले रत्न के समान चमकती है, सुशोभित है; उनकी कटि कदम्ब-पुष्प के पराग-सम पीत रेशम में लिपटी है, जो एक रत्नजड़ित करधनी से बँधी है।



ब्रह्मा शेषनाग पर विराजमान भगवान् की पूर्ण शोभा का दर्शन करते हैं: मरकत-पर्वत को मात देता तेजोमय स्वरूप, स्वर्ण-मुकुट से सुशोभित, वन-पुष्पों की माला पहने, अपने भक्तों के समक्ष खुले रूप में दर्शाए गए इच्छापूर्क चरण-कमल तथा जगत्-पीड़ाहारी कोमल मुस्कान (श्लोक 24-31)।

अपने चौदह लोकों के स्वरूप में, मैत्रेय कहते हैं, भगवान् वृक्षों के राजा चन्दन-वृक्ष के समान हैं — उनकी दो सुदृढ़ भुजाएँ उसकी असंख्य रत्नजड़ित शाखाएँ हैं, उनका तना स्वयं से भिन्न किसी मूल से रहित है, तथा शेषनाग के फण उसके तने के चारों ओर वैसे ही लिपटे हैं जैसे कोई सर्प किसी विशाल वृक्ष के मूल के चारों ओर लिपटा हो। सागर के मध्य लेटे हुए, वे जल से घिरे किसी पर्वत के समान प्रतीत होते हैं: जिस प्रकार एक पर्वत सचेतन तथा अचेतन दोनों प्रकार के प्राणियों को आश्रय देता है, उसी प्रकार भगवान् समस्त सचराचर सृष्टि के विश्रामस्थल हैं; जिस प्रकार एक पर्वत विशाल सर्पों का मित्र होता है, उसी प्रकार भगवान् शेषनाग के प्रिय मित्र हैं; तथा शेषनाग के फणों को सुशोभित करने वाले असंख्य मुकुट उनके चारों ओर स्वर्ण-शिखरों के समान उठते हैं, जबकि उनके वक्षस्थल पर चमकती कौस्तुभ मणि किसी पर्वत के हृदय से

निकाले गए रत्न के समान दीप्तिमान है। उनके कण्ठ में वन-पुष्पों की एक माला लटकती है, जो साक्षात् उनकी महिमा है, तथा जिसके चारों ओर वेद स्वयं मधुमक्खियों के रूप में उनकी स्तुति गुनगुनाते हैं। वे सूर्य, चन्द्र, वायु तथा अग्नि के लिए भी अगम्य हैं, तथा अपने ही अस्त्रों — सुदर्शन तथा अन्य, जो सत्, चित् तथा आनन्द के साक्षात् स्वरूप हैं — द्वारा चतुर्दिक सुरक्षित हैं, जो सदैव उनकी परिक्रमा करते रहते हैं।

ब्रह्मा का मन स्थिर होना तथा स्तुति का आरम्भ

एक ही क्षण में यह सब देखकर — स्वयं भगवान्, वह नाभि-कमल जिसने उन्हें जन्म दिया था, जल, वायु, ऊपर का आकाश, तथा कमल पर विराजमान अपना ही स्वयं — इनके अतिरिक्त कुछ नहीं, ब्रह्मा, जो ब्रह्माण्ड के होने वाले शिल्पी हैं, स्वयं को सब कुछ तथा कुछ भी नहीं होने की स्थिति में एक साथ पाते हैं। रजोगुण से अभिभूत होकर, वे सृष्टि के महान् कार्य को आरम्भ करने के लिए उत्सुक हैं; किन्तु अपने समक्ष जो कुछ भी है उसका सर्वेक्षण करते हुए, वे समझ जाते हैं कि यही उनकी समस्त सामग्री है — न कम, न अधिक। अतः, इतने अल्प के आधार पर उतावली से कार्य करने के बजाय, ब्रह्मा अपना मन उस एकमात्र भगवान् पर स्थिर करते हैं जिनकी गतियाँ किसी को भी ज्ञात नहीं, तथा, सृष्टि के आगामी कार्य के प्रति संकल्पित होते हुए भी, उन्हीं की स्तुति करना आरम्भ करते हैं जो अकेले ही समस्त स्तुति के योग्य हैं।

स कर्मबीजं रजसोपरक्तः

प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ।

अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्य-

मव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥ ३३ ॥

sa karma-bijaṁ rajasoparaktaḥ prajāḥ sisṛkṣann iyad eva dṛṣṭvā astaud visargābhimukhas tam īḍyam avyakta-vartmany abhiveśitātmā

अर्थ: रजोगुण से अभिभूत होकर, तथा सृष्टि का कार्य आरम्भ करने की इच्छा से, ब्रह्मा ने, इसके लिए केवल इतनी ही सामग्री देखकर, अपना मन उस भगवान् पर स्थिर किया जिनकी गतियाँ किसी को ज्ञात नहीं, और सृष्टि-कार्य का संकल्प मन में लिए हुए भी सर्वप्रथम उन्हीं की वन्दना करने लगे, जो अकेले ही सम्पूर्ण वन्दना के अधिकारी हैं। (स्कन्ध 3, अध्याय 8, श्लोक 33)



कमल, जल, वायु, आकाश तथा स्वयं को ही सृष्टि हेतु अपनी एकमात्र सामग्री के रूप में देखकर, ब्रह्मा अपना मन उस भगवान् पर स्थिर करते हैं जिनकी गतियाँ किसी को ज्ञात नहीं — तथा, सृष्टि के आगामी कार्य के प्रति संकल्पित होते हुए भी, सर्वप्रथम उन्हीं की स्तुति करने लगते हैं (श्लोक 32-33)।

आत्ममग्नता के इस एकमात्र कृत्य के साथ, अभी तक एक भी लोक की रचना हुए बिना, अष्टम प्रवचन समाप्त होता है — तथा वह स्तुति जो ब्रह्मा अब अर्पित करने जा रहे हैं, वे शब्द जिनसे प्रथमजात स्वयं अपने ही स्रोत को सम्बोधित करते हैं, आगामी अध्याय में हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. गुरु के प्रति आदर निष्ठावान् जिज्ञासु के प्रति आदर से आरम्भ होता है। मैत्रेय सिद्धान्त से नहीं, अपितु विदुर की स्वयं की भक्ति की प्रशंसा से आरम्भ करते हैं, उत्तर देने से पहले प्रश्नकर्ता का सम्मान करते हुए (श्लोक 1)।
2. पवित्र ज्ञान केवल हृदय से हृदय तक, अखण्ड रूप से हस्तान्तरित होने से ही जीवित रहता है। भागवत-शिक्षा विदुर तक केवल इसलिए पहुँचती है क्योंकि मैत्रेय से पूर्व के पाँच गुरुओं — संकर्षण, सनत्कुमार, सांख्यायन, पराशर, तथा अब स्वयं मैत्रेय — में से प्रत्येक ने इसे निष्ठापूर्वक आगे बढ़ाया (श्लोक 7-9)।
3. स्वयं परमेश्वर का विश्राम भी निष्क्रियता नहीं, अपितु एक भिन्न कोटि की क्रियाशीलता है। नारायण की ब्रह्माण्डीय निद्रा को पूर्णतः सचेत विश्राम के रूप में वर्णित किया गया है, जिसमें उनकी आत्म-चेतना उस समय भी कभी लुप्त नहीं होती जब सम्पूर्ण बाह्य सृष्टि उनके भीतर सुप्त पड़ी रहती है (श्लोक 10-12)।
4. सृष्टि किसी योजना से नहीं, अपितु स्थिरता से उदित होने वाले प्रकाश के एक बिन्दु से आरम्भ होती है। सम्पूर्ण प्रकट ब्रह्माण्ड भगवान् की नाभि से निकलने वाले एक ही कमल से विकसित होता है — विशाल जटिलता सचमुच एक ही बिन्दु से बढ़ती हुई (श्लोक 13-15)।
5. अपने उद्गम की खोज केवल बाह्य प्रयास से पूर्ण नहीं हो सकती। ब्रह्मा प्रलय-जल में हताश होकर अपने ही अस्तित्व के मूल की खोज में गोता लगाते हैं और असफल रहते हैं; केवल समाधि में सौ वर्षों की आन्तरिक स्थिरता ही वह प्रकट करती है जो उन्मत्त खोज नहीं कर सकी (श्लोक 18-22)।

6. परमात्मा का सच्चा दर्शन भीतर से एक रहस्योद्घाटन के रूप में आता है, बाहर से किसी खोज के रूप में नहीं। शेषनाग पर भगवान् का ब्रह्मा को हुआ दर्शन अनायास, उनके ही हृदय में, उनके अपने प्रयास से नहीं अपितु भगवान् की कृपा से, तभी होता है जब वे बाहर खोजना बन्द कर देते हैं (श्लोक 22)।

7. सृष्टि के कार्य के समक्ष होते हुए भी, स्वयं सृष्टिकर्ता भी क्रिया से पहले स्तुति की ओर मुड़ते हैं। आगामी विशाल कार्य के समक्ष तथा कार्य हेतु न्यूनतम सामग्री होते हुए भी, ब्रह्मा का प्रथम कृत्य निर्माण नहीं, अपितु भगवान् की स्तुति है — भक्ति को कर्म से पहले रखते हुए (श्लोक 33)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

ब्रह्मा को देखने में — जो स्वयं ब्रह्माण्ड के शिल्पी हैं, सम्पूर्ण सृष्टि के “स्वयंभू” प्रथम सत्ता — इतनी पूर्णता से उसी कार्य में असफल होते हुए जिसे वे सबसे पहले करने निकलते हैं, कुछ विनम्रतादायक है। वे गोता लगाते हैं, वे खोजते हैं, वे एक ही हताश छलांग में सौ जन्मों के तुल्य प्रयास लगा देते हैं, और कुछ नहीं पाते। तभी जब वे बाहर खोजना छोड़कर अपना ध्यान पूर्णतः भीतर की ओर मोड़ते हैं, उस आन्तरिक दृष्टि को एक क्षण के लिए नहीं अपितु सौ वर्षों तक बनाए रखते हैं, तब जिस वस्तु की वे खोज कर रहे थे वह उनके ही हृदय से, कोमलतापूर्वक, स्वयं प्रकट हो जाती है। यहाँ एक शिक्षा निहित है कि किसी भी अशान्त प्रयास की मात्रा उचित रूप से बनाए रखी गई स्थिरता का स्थान नहीं ले सकती — तथा दर्शन के उपस्थित होते ही ब्रह्मा जो करते हैं उसमें एक और शिक्षा है: सृष्टि की शक्ति को तत्काल हथियाने के बजाय, वे स्तुति के लिए रुक जाते हैं। प्रथम लोक के रचे जाने से पहले ही, प्रथम सत्ता हमें, शब्दों के बिना, यह सिखाती है कि स्तुति कर्म से पहले आनी चाहिए, तथा ब्रह्माण्ड-निर्माण जैसा विशाल कार्य भी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए एक क्षण और प्रतीक्षा कर सकता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने जीवन में उस एक विषय पर ध्यान दें जिसे आप केवल बाह्य प्रयास से — खोजकर, संघर्ष करके, धकेलकर — सुलझाने, समझने अथवा ठीक करने का प्रयास कर रहे हैं, बिना भीतर देखने के लिए रुके। केवल पाँच शान्त मिनट निकालें, स्थिर बैठें, सम-श्वास लें, तथा बाहर के बजाय अपना ध्यान भीतर की ओर मोड़ें, जैसा ब्रह्मा ने जल में अपनी खोज असफल होने के बाद अन्ततः किया। आरम्भ करने से पहले, तथा समाप्त करते समय पुनः, धीरे से दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इस स्मरण को यह याद दिलाने दें कि कुछ उत्तर अधिक कठोरता से खोजने से नहीं मिलते, अपितु उन्हें प्राप्त करने योग्य स्थिरता बनने से मिलते हैं।

उपसंहार

तृतीय स्कन्ध का अष्टम प्रवचन वह बिन्दु है जहाँ विदुर की दीर्घ यात्रा अन्ततः फल देती है: मैत्रेय शिक्षा देना आरम्भ करते हैं, और वे सर्वप्रथम जो सिखाते हैं वह ब्रह्माण्ड के आरम्भ की ही कथा है — एक ऐसी कथा जो अन्ततः, अपने मूल में, एक ही सत्ता की अपने उद्गम की खोज की कथा सिद्ध होती है। हमने भगवान् को प्रलय-जल पर सचेत निद्रा में विश्राम करते देखा है; एक कमल को, और फिर एक चतुर्मुख सृष्टिकर्ता को, उनकी नाभि से उत्पन्न होते देखा है; उस सृष्टिकर्ता को अपने ही अस्तित्व के मूल की खोज में गहराई तक निष्फल भटकते देखा है; तथा अन्ततः उन्हें, सौ वर्षों की स्थिरता के पश्चात्, अपने ही हृदय में उसी भगवान् की सम्पूर्ण तथा तेजोमय शोभा का दर्शन करते देखा है जिन्होंने उन्हें जन्म दिया। एक भी लोक रचे जाने से पहले ही, ब्रह्मा वह शिक्षा सीख चुके हैं जो हर भक्त को अन्ततः सीखनी होती है: कि स्तुति कर्म से पहले आती है, तथा स्थिरता वह प्रकट करती है जो खोज नहीं कर सकती। आगामी अध्याय में, हम वह स्तुति सुनेंगे जिसे ब्रह्मा अब अर्पित करना आरम्भ कर रहे हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय स्कन्ध, अष्टम प्रवचन, पृष्ठ 165–170।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र जी के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका की पुनरावृत्ति नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई सम्बद्धता अथवा समर्थन निहित नहीं है।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-3-adhyay-8-brahma-ka-prakatya.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट